The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 9 | September 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर–तत्त्व एवं कैवल्य की अवधारणा: एक दार्शनिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

मुकेश कुमार

शोधार्थी, योग विभाग, निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर

डॉ मनेश कँवर

सहायक प्रोफेसर, योग विभाग, निर्वाण विश्वविद्यालय जयपुर

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.23771764

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 27-08-2026

Accepted: 26-09-2026

Published: 20-10-2026

Keywords:

पतञ्जलि योगसूत्र, ईश्वर, ईश्वरप्रणिधान, पुरुषविशेष, कैवल्य, विवेकख्याति, प्रकृति, पुरुष, योगदर्शन।

ABSTRACT

भारतीय दर्शन की परम्परा में योगदर्शन का विशिष्ट स्थान है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा सूत्रबद्ध योगसूत्र मनुष्य के मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास को एक व्यवस्थित दार्शनिक आधार प्रदान करता है। योगदर्शन का अंतिम लक्ष्य कैवल्य है, जबकि ईश्वर की अवधारणा साधना–पद्धति में एक विशिष्ट आध्यात्मिक आधार के रूप में सामने आती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में पतञ्जलि योगसूत्र के आधार पर ईश्वर–तत्त्व तथा कैवल्य की अवधारणाओं का दार्शनिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से प्रथम पाद के ईश्वर सम्बन्धी सूत्रों तथा द्वितीय एवं चतुर्थ पाद में प्रतिपादित साधना, विवेकख्याति और कैवल्य के स्वरूप को आधार बनाया गया है। पतञ्जलि ईश्वर को सामान्य जीवात्मा से भिन्न 'पुरुषविशेष' के रूप में निरूपित करते हैं, जो क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अप्रभावित है। दूसरी ओर कैवल्य को पुरुष और प्रकृति के संबंध की निवृत्ति तथा चितिशक्ति की अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा के रूप में समझाया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि योगदर्शन में ईश्वर और कैवल्य समानार्थक अवधारणाएँ नहीं हैं। ईश्वर साधना के लिए एक विशिष्ट आध्यात्मिक आश्रय प्रदान करता है, जबकि कैवल्य साधक की अंतिम दार्शनिक उपलब्धि है। ईश्वरप्रणिधान, प्रणव–जप, समाधि तथा विवेकख्याति के संदर्भ में ईश्वर की अवधारणा साधना–पथ को समर्थ बनाती है, जबकि कैवल्य का दार्शनिक आधार पुरुष–प्रकृति विवेक में निहित है। इस प्रकार योगदर्शन में ईश्वर और कैवल्य के

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

मध्य संबंध को साधन और साध्य के व्यापक संदर्भ में समझा जा सकता है, यद्यपि दोनों को पूर्णतः एक–दूसरे का पर्याय मानना उचित नहीं है।

1. प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक परम्परा में योगदर्शन मानव जीवन की आध्यात्मिक समस्या को केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से नहीं देखता, बल्कि उसके समाधान के लिए व्यवस्थित साधना–पद्धति भी प्रस्तुत करता है। महर्षि पतञ्जलि का योगसूत्र इस परम्परा का प्रमुख ग्रन्थ है। योगसूत्र का आरम्भ ही योग के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए होता हैकृ"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" (1.2)। इस सूत्र के माध्यम से पतञ्जलि योग को चित्त की वृत्तियों के निरोध के रूप में परिभाषित करते हैं। चित्तवृत्तियों के निरोध के पश्चात् द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित होता है "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम" (1.3)। इस प्रकार योगदर्शन का मूल प्रश्न मनुष्य की बाह्य परिस्थितियों से अधिक उसके चित्त, अनुभव और आत्मस्वरूप से संबंधित है।

पतञ्जलि के योगदर्शन की विशेषता यह है कि इसमें सांख्य से साम्य रखने वाली प्रकृति–पुरुष की दार्शनिक संरचना के साथ ईश्वर की विशिष्ट अवधारणा भी प्रस्तुत की गई है। योगसूत्र के प्रथम पाद में ईश्वर को "पुरुषविशेष" कहा गया हैकृ"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" (1.24)। इसके बाद ईश्वर की सर्वज्ञता, पूर्वाचार्यों के गुरु होने, प्रणव के माध्यम से उसके बोध तथा प्रणव–जप और उसके अर्थ–भावना का उल्लेख मिलता है। दूसरी ओर योगदर्शन का अंतिम लक्ष्य कैवल्य है। कैवल्य को केवल किसी धार्मिक विश्वास या मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाली स्थिति के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि पुरुष और प्रकृति के संबंध की दार्शनिक निवृत्ति तथा चौतन्य की अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा के रूप में समझाया गया है। चतुर्थ पाद का अंतिम सूत्र "पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति" (4.34)कैवल्य की इसी दोहरी व्याख्या को सामने रखता है।

इसी कारण पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर और कैवल्य के संबंध का अध्ययन केवल धार्मिक अथवा भक्तिपरक दृ ष्टिकोण से करना पर्याप्त नहीं है। इसके लिए योगदर्शन की तत्त्वमीमांसा, साधनामार्ग, पुरुष–प्रकृति संबंध, क्लेश–सिद्धान्त, विवेकख्याति और समाधि की अवधारणाओं को साथ लेकर चलना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन इसी व्यापक दार्शनिक संदर्भ में ईश्वर–तत्त्व एवं कैवल्य की अवधारणा का विश्लेषण करता है।

2. शोध की समस्या

पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर की अवधारणा अपेक्षाकृत संक्षिप्त सूत्रों में प्रस्तुत हुई है, जबकि कैवल्य योगदर्शन के सम्पूर्ण साधना–तंत्र का अंतिम लक्ष्य है। इसलिए दोनों अवधारणाओं के बीच संबंध को लेकर विभिन्न प्रकार की व्याख्याएँ सम्भव हैं। एक ओर ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग तथा नियम के रूप में स्थान दिया गया है और उसे समाधि से जोड़ा गया है, दूसरी ओर कैवल्य की प्राप्ति के लिए विवेकख्याति तथा पुरुष–प्रकृति के भेदज्ञान को प्रमुख साधन बताया गया है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि योगदर्शन में ईश्वर की वास्तविक दार्शनिक भूमिका क्या है और कैवल्य के साथ उसका संबंध किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। समस्या का दूसरा पक्ष यह है कि ईश्वर को कैवल्य का

प्रत्यक्ष और एकमात्र कारण मानना योगसूत्र की समग्र साधना–व्यवस्था के अनुरूप है या नहीं। पतञ्जलि ईश्वरप्रणिधान को साधना का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार करते हैं, परंतु कैवल्य की दार्शनिक व्याख्या करते समय विवेक, अविद्या की निवृत्ति और गुणों के प्रतिप्रसव को भी केंद्रीय स्थान देते हैं। अतः इस अध्ययन में ईश्वर को न तो केवल धार्मिक विश्वास तक सीमित किया गया है और न ही कैवल्य के साथ उसका पूर्ण तादात्म्य स्वीकार किया गया है।

3. साहित्य समीक्षा

पतञ्जलि योगसूत्र पर प्राचीन काल से ही अनेक भाष्य और टीकाएँ उपलब्ध रही हैं। व्यासभाष्य योगसूत्र की व्याख्या की प्राचीनतम और अत्यंत प्रभावशाली परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बाद वाचस्पति मिश्र की तत्त्ववैशारदी तथा अन्य टीकाकारों ने योगसूत्र के दार्शनिक पक्षों की विस्तृत व्याख्या की। आधुनिक काल में भी योगसूत्र पर अनेक विद्वानों ने भाष्य, अनुवाद और विश्लेषण प्रस्तुत किए हैं। उपलब्ध साहित्य में ईश्वर, ईश्वरप्रणिधान, समाधि, पुरुष–प्रकृति संबंध और कैवल्य पर स्वतंत्र रूप से पर्याप्त चर्चा मिलती है। तथापि ईश्वर–तत्त्व और कैवल्य को एक ही दार्शनिक अध्ययन के अंतर्गत रखकर उनके पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करना अभी भी एक उपयोगी शोध–विषय है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक समन्वित विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास है।

4. शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:–

1. पतञ्जलि योगसूत्र में प्रतिपादित ईश्वर–तत्त्व का दार्शनिक स्वरूप स्पष्ट करना।

2. 'पुरुषविशेष' के रूप में ईश्वर की अवधारणा का विश्लेषण करना।

3. ईश्वरप्रणिधान की साधनात्मक भूमिका का अध्ययन करना।

4. पतञ्जलि योगदर्शन में कैवल्य की अवधारणा का दार्शनिक विवेचन करना।

5. विवेकख्याति, गुणों के प्रतिप्रसव और कैवल्य के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करना।

6. ईश्वर और कैवल्य के बीच स्थापित होने वाले दार्शनिक संबंध का विश्लेषण करना।

7. यह स्पष्ट करना कि योगदर्शन में ईश्वर और कैवल्य को किस सीमा तक साधन–साध्य संबंध में समझा जा सकता है।

5. शोध प्रश्न

1. पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर का दार्शनिक स्वरूप क्या है?

2. 'पुरुषविशेष' कहे जाने का ईश्वर की अवधारणा पर क्या प्रभाव पड़ता है?

3. ईश्वरप्रणिधान का योगसाधना में क्या स्थान है?

4. कैवल्य की प्राप्ति के लिए विवेकख्याति की क्या भूमिका है?

5. ईश्वर और कैवल्य के बीच किस प्रकार का दार्शनिक संबंध स्थापित किया जा सकता है?

6. क्या योगदर्शन में ईश्वर को कैवल्य का प्रत्यक्ष और एकमात्र कारण माना गया है?

6. शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध मुख्यतः दार्शनिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में पतञ्जलि योगसूत्र को स्वीकार किया गया है तथा उसकी व्याख्या के लिए व्यासभाष्य और प्रमुख पारम्परिक एवं आधुनिक टीकाओं का सहारा लिया गया है। शोध में पाठ–विश्लेषण, अवधारणा–विश्लेषण तथा तुलनात्मक दार्शनिक विवेचन का प्रयोग किया गया है। ईश्वर, पुरुष, प्रकृति, क्लेश, कर्म, समाधि, विवेकख्याति और कैवल्य से संबंधित सूत्रों को उनके पारस्परिक संदर्भ में पढ़कर निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य किसी एक पारम्परिक व्याख्या को अंतिम मान लेना नहीं, बल्कि योगसूत्र की मूल संरचना के आधार पर ईश्वर और कैवल्य की अवधारणाओं के बीच संबंध को समझना है।

7. पतञ्जलि योगदर्शन में ईश्वर की अवधारणा

पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर की अवधारणा प्रथम पाद के 23वें से 29वें सूत्र तक विशेष रूप से सामने आती है। सूत्र 1.23 में कहा गया है "ईश्वरप्रणिधानाद्वा"। यहाँ 'वा' शब्द यह संकेत करता है कि ईश्वरप्रणिधान योग की साधना में एक वैकल्पिक अथवा विशिष्ट मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके तुरंत बाद सूत्र 1.24 में ईश्वर की परिभाषा दी जाती है "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।" इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर ऐसा विशिष्ट पुरुष है जो क्लेश, कर्म, उनके परिणाम और संस्कारात्मक आशय से प्रभावित नहीं होता। यहाँ ईश्वर को केवल जगत् के सृजनकर्ता के रूप में परिभाषित नहीं किया गया है। पतञ्जलि की परिभाषा में ईश्वर की सबसे प्रमुख विशेषता उसका क्लेश और कर्म से असम्पृक्त होना है। सामान्य जीव संसार में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश जैसे क्लेशों से प्रभावित होता है और कर्म के परिणामों का अनुभव करता है। ईश्वर इन बंधनकारी प्रक्रियाओं से परे है। इस अर्थ में ईश्वर की अवधारणा योगदर्शन की मुक्ति–दृष्टि के साथ सीधे जुड़ती है।

8. ईश्वर 'पुरुषविशेष' के रूप में

'पुरुषविशेष' पद योगदर्शन में ईश्वर की दार्शनिक स्थिति को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। योगदर्शन पुरुष को चेतन, द्रष्टा और साक्षी तत्त्व मानता है, जबकि प्रकृति को परिवर्तनशील और त्रिगुणात्मक माना जाता है। सामान्य पुरुष

प्रकृति के साथ संबंध के कारण अनुभव और बंधन की स्थिति में दिखाई देता है। ईश्वर को 'विशेष पुरुष' कहकर पतञ्जलि उसकी विशिष्ट स्थिति का संकेत करते हैं। ईश्वर सामान्य जीव की तरह कर्म–संसार से प्रभावित नहीं है। योगसूत्र 1.24 में क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से उसकी असम्पृक्तता स्पष्ट की गई है। इस प्रकार ईश्वर की विशिष्टता किसी भौतिक शक्ति की मात्रा में नहीं, बल्कि उसके पूर्णतः अबाधित आध्यात्मिक स्वरूप में है। ईश्वर का यह स्वरूप योगी के लिए एक ऐसे आदर्श का निर्माण करता है जो क्लेश और कर्म की सामान्य व्यवस्था से मुक्त है।

9. ईश्वर और क्लेश–कर्म से असम्पृक्तता

योगदर्शन में क्लेश बंधन के मूल कारणों में हैं। अविद्या से उत्पन्न अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश व्यक्ति के अनुभव–जगत को प्रभावित करते हैं। क्लेशों के आधार पर कर्म उत्पन्न होते हैं और कर्मों से उनके परिणाम तथा संस्कारों की श्रृंखला विकसित होती है। यह प्रक्रिया संसार में पुनरावृत्ति का आधार बनती है। ईश्वर इस चक्र से परे है। पतञ्जलि द्वारा ईश्वर को "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः" कहने का दार्शनिक महत्व यही है कि ईश्वर के स्वरूप में वह बंधनकारी कारण–श्रृंखला नहीं पाई जाती जो सामान्य जीव के अनुभव को प्रभावित करती है। इस प्रकार ईश्वर की अवधारणा योगदर्शन में पूर्ण आध्यात्मिक स्वतंत्रता के एक आदर्श रूप को अभिव्यक्त करती है।

10. ईश्वर सर्वज्ञता का आधार और आदिगुरु

योगसूत्र 1.25 में कहा गया है "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम।" इसका अर्थ यह है कि ईश्वर में सर्वज्ञता का सर्वोच्च बीज विद्यमान है। इसके बाद सूत्र 1.26 में उसे "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात" कहा गया है। अर्थात् काल की सीमा से परे होने के कारण वह पूर्वज आचार्यों का भी गुरु है। यहाँ ईश्वर का 'गुरु' स्वरूप विशेष महत्व रखता है। योगदर्शन में ज्ञान केवल बौद्धिक सूचना नहीं है, बल्कि ऐसा ज्ञान है जो साधक को उसके वास्तविक स्वरूप की ओर ले जाता है। ईश्वर को आदिगुरु के रूप में स्वीकार करना ज्ञान की उस परम्परा को इंगित करता है जो काल की सीमाओं से बंधी नहीं है। इस प्रकार ईश्वर योगदर्शन में केवल आराधना का विषय नहीं, बल्कि आध्यात्मिक मार्गदर्शन की अवधारणा से भी जुड़ा हुआ है।

11. प्रणव और ईश्वर

योगसूत्र 1.27 में कहा गया हैकृ"तस्य वाचकः प्रणवः।" अर्थात् ईश्वर का वाचक प्रणव है। यहाँ प्रणव से सामान्यतः 'ॐ*

का अभिप्राय लिया जाता है। अगले सूत्र में पतञ्जलि कहते हैं "तज्जपस्तदर्थभावनम" (1.28), अर्थात् उस प्रणव का जप और उसके अर्थ की भावना करनी चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि पतञ्जलि ईश्वर की अवधारणा को केवल सैद्धान्तिक स्तर पर नहीं छोड़ते। ईश्वर के साथ साधक का संबंध जप, भावना और ध्यान जैसी साधनाओं के माध्यम से स्थापित किया जाता है। सूत्र 1.29 में कहा गया है कि इससे प्रत्यक्चेतना का अधिगम तथा अन्तरायों का अभाव होता है। इस प्रकार प्रणव–साधना ईश्वर–तत्त्व और योगाभ्यास के बीच एक व्यावहारिक सेतु का कार्य करती है।

12. ईश्वरप्रणिधान की अवधारणा

ईश्वरप्रणिधान का अर्थ सामान्य रूप से ईश्वर के प्रति समर्पण, आत्मनिवेदन अथवा साधना की दिशा को ईश्वराभिमुख करना माना जाता है। पतञ्जलि इसे केवल प्रथम पाद तक सीमित नहीं रखते। द्वितीय पाद के सूत्र 2.1 में "तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" कहकर ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग का एक अंग बनाया गया है। इसी प्रकार सूत्र 2.32 में इसे नियमों में सम्मिलित किया गया है। इससे ईश्वरप्रणिधान की भूमिका और स्पष्ट होती है। यह केवल पूजा–पद्धति नहीं है, बल्कि साधक के अहंकार, आसक्ति और मानसिक अस्थिरता को साधना की दिशा में परिवर्तित करने वाली प्रक्रिया है। समर्पण का अर्थ यहाँ निष्क्रियता नहीं, बल्कि अपने कर्म, साधना और आध्यात्मिक प्रयास को एक उच्चतर चेतना के प्रति समर्पित करना है।

13. ईश्वरप्रणिधान और समाधि

योगसूत्र 2.45 में स्पष्ट कहा गया है "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात।" इस सूत्र के आधार पर ईश्वरप्रणिधान और समाधि के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित होता है। समाधि योगदर्शन में चित्त की अत्यंत सूक्ष्म एकाग्रता और विषय–विलय की उच्च अवस्था है। ईश्वरप्रणिधान साधक के चित्त में समर्पण, एकाग्रता और अहंकार–शिथिलता को विकसित करने में सहायक माना जाता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ईश्वरप्रणिधान को समाधि की दिशा में एक साधन के रूप में समझना चाहिए। पतञ्जलि का पूरा योगमार्ग केवल ईश्वरप्रणिधान तक सीमित नहीं है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के माध्यम से साधना का व्यापक ढाँचा निर्मित होता है। इसलिए ईश्वरप्रणिधान इस समग्र प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

14. कैवल्य की अवधारणा

कैवल्य पतञ्जलि योगदर्शन का अंतिम पुरुषार्थ है। 'कैवल्य' शब्द का सामान्य अर्थ एकाकीपन, स्वतंत्रता या केवल अपने स्वरूप में स्थित होना है। योगदर्शन के संदर्भ में इसका अर्थ किसी सामाजिक अलगाव से नहीं है, बल्कि पुरुष के प्रकृति और उसके विकारों से असंग स्वरूप की अनुभूति से है। कैवल्य को समझने के लिए पुरुष और प्रकृति का संबंध समझना आवश्यक है। योगदर्शन के अनुसार पुरुष चेतन द्रष्टा है और प्रकृति समस्त मानसिक एवं भौतिक परिवर्तन का आधार है। अविद्या के कारण पुरुष स्वयं को प्रकृति के गुणों और उनके परिणामों के साथ संबद्ध अनुभव करता है। जब विवेक के माध्यम से यह भेद स्पष्ट हो जाता है, तब बंधन का आधार समाप्त होता है। योगसूत्र 2.25 में कहा गया है "तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम।" अर्थात् अविद्या के अभाव से पुरुष और प्रकृति के संयोग का अभाव होता है और यही द्रष्टा का कैवल्य है। इस सूत्र से कैवल्य का संबंध सीधे अविद्या की निवृत्ति और संयोग के अभाव से स्थापित होता है।

15. विवेकख्याति और कैवल्य

योगदर्शन में विवेकख्याति को कैवल्य की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। सूत्र 2.26 में कहा गया है "विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।" अर्थात् अविच्छिन्न विवेकख्याति ही हान अर्थात् बंधन की निवृत्ति का उपाय है। विवेकख्याति का आशय पुरुष और प्रकृति, द्रष्टा और दृश्य, चेतन और जड़ के बीच स्पष्ट भेदबोध से है। जब साधक यह समझने में समर्थ होता है कि चित्त की वृत्तियाँ, भावनाएँ, विचार, अनुभव और प्रकृति के सभी परिवर्तन द्रष्टा पुरुष का वास्तविक स्वरूप नहीं हैं, तब पहचान का भ्रम धीरे–धीरे समाप्त होता है। यही विवेक अंततः कैवल्य की दिशा में ले जाता है। इस प्रकार कैवल्य की प्राप्ति केवल किसी बाहरी सत्ता की कृपा पर निर्भर प्रक्रिया के रूप में नहीं समझी जा सकती। योगसूत्र में साधक के विवेक, अभ्यास, वैराग्य, ध्यान और समाधि का भी स्पष्ट महत्त्व है।

16. गुणों का प्रतिप्रसव और कैवल्य

योगदर्शन में प्रकृति को सत्त्व, रजस् और तमस्कृइन तीन गुणों से युक्त माना गया है। ये गुण प्रकृति के विभिन्न रूपों और मानसिक अवस्थाओं में कार्य करते हैं। जब पुरुष प्रकृति के साथ अपने मिथ्या तादात्म्य को समाप्त कर देता है, तब प्रकृति का पुरुष के लिए प्रयोजन समाप्त हो जाता है। चतुर्थ पाद के अंतिम सूत्र में कहा गया है "पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति" (4.34)। यहाँ कैवल्य की व्याख्या दो प्रकार से की गई है। एक ओर पुरुष के लिए प्रयोजनहीन हो चुके गुणों का अपने कारण में प्रतिप्रसव कैवल्य है, दूसरी ओर चितिशक्ति का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना भी कैवल्य है। इससे स्पष्ट होता है कि कैवल्य को किसी नए लोक या किसी बाहरी सत्ता में प्रवेश के रूप में नहीं समझना चाहिए। यह पुरुष की स्वतंत्र चेतन सत्ता का अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित होना है।

17. ईश्वर और कैवल्य का पारस्परिक संबंध

ईश्वर और कैवल्य योगदर्शन की दो महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं, लेकिन दोनों की दार्शनिक भूमिका समान नहीं है। ईश्वर एक विशिष्ट पुरुष है, जबकि कैवल्य पुरुष की अंतिम स्वतंत्रता अथवा स्वरूप–प्रतिष्ठा की स्थिति है। इसलिए ईश्वर और कैवल्य को एक–दूसरे का पर्याय मानना उचित नहीं होगा। इन दोनों के बीच संबंध मुख्यतः साधना के स्तर पर दिखाई देता है। ईश्वरप्रणिधान साधक के चित्त को स्थिर करने, अहंकार की प्रधानता को कम करने और साधना को एकाग्र दिशा प्रदान करने में सहायक है। योगसूत्र 2.45 ईश्वरप्रणिधान को समाधिसिद्धि से जोड़ता है। समाधि की उन्नत अवस्था से विवेक का विकास होता है और विवेकख्याति के माध्यम से पुरुष–प्रकृति भेद स्पष्ट होता है। इस दृष्टि से ईश्वर–संबंधी साधना कैवल्य की ओर जाने वाले व्यापक मार्ग का एक महत्त्वपूर्ण घटक बनती है। फिर भी यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि ईश्वरप्रणिधान कैवल्य की दिशा में सहायक साधन है, जबकि कैवल्य का दार्शनिक आधार विवेक और पुरुष–प्रकृति के भेदज्ञान में निहित है। योगसूत्र स्वयं कैवल्य को ईश्वर के साथ तादात्म्य के रूप में परिभाषित नहीं करता।

18. ईश्वर और पुरुष का दार्शनिक संबंध

योगदर्शन में पुरुष चेतन तत्त्व है। सामान्य पुरुष प्रकृति के साथ संबंध के कारण अनुभव और बंधन की स्थिति में दिखाई देता है। ईश्वर को पुरुषविशेष कहा गया है, इसलिए ईश्वर की अवधारणा पुरुष–तत्त्व से जुड़ी हुई है, परंतु वह सामान्य जीवपुरुष के समान नहीं है। उसकी विशेषता यह है कि वह क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से असम्पृक्त है। इस अंतर से योगदर्शन में ईश्वर और जीव के बीच दार्शनिक भेद स्पष्ट होता है। ईश्वर किसी सीमित व्यक्तिगत अनुभव से बंधा हुआ पुरुष नहीं है। उसके संबंध में सर्वज्ञता का बीज और कालातीत गुरु की विशेषता भी बताई गई है। इस प्रकार ईश्वर योगदर्शन की पुरुष–मीमांसा में एक विशिष्ट स्थान रखता है।

19. सांख्य और योग के संदर्भ में ईश्वर

योगदर्शन की तत्त्वमीमांसा सांख्यदर्शन के साथ गहरे रूप से संबंधित है। पुरुष और प्रकृति, गुण, अविद्या, विवेक और मुक्ति जैसे अनेक मूलभूत विचार दोनों परम्पराओं में महत्त्वपूर्ण हैं। योगदर्शन की विशेषता यह है कि वह इस दार्शनिक संरचना के भीतर ईश्वर की अवधारणा को भी स्थान देता है। इसी कारण योगदर्शन को समझते समय केवल ईश्वर की उपासना पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं है। योग का व्यापक दार्शनिक ढाँचा पुरुष–प्रकृति विवेक पर आधारित है। ईश्वरप्रणिधान इस ढाँचे के भीतर साधना को एक विशिष्ट दिशा प्रदान करता है। अतः योगदर्शन में ईश्वरवाद और विवेकप्रधान मुक्ति–दर्शन दोनों को साथ समझना आवश्यक है।

20. ईश्वरप्रणिधान की साधनात्मक भूमिका

ईश्वरप्रणिधान साधक के लिए मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों स्तरों पर महत्त्वपूर्ण है। साधना के मार्ग में अहंकार, अस्थिरता, आसक्ति और परिणाम की चिंता बाधा उत्पन्न कर सकती है। ईश्वरप्रणिधान इन प्रवृत्तियों को समर्पण और साधना की भावना में परिवर्तित करने का अवसर देता है। इसका एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि साधक अपने प्रयास को केवल व्यक्तिगत उपलब्धि के रूप में नहीं देखता। साधना का उद्देश्य आत्मप्रदर्शन के स्थान पर आत्मशोधन बन जाता है। इस प्रकार ईश्वरप्रणिधान योगाभ्यास के नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष को मजबूत करता है।

21. ईश्वर–समाधि–विवेकख्याति–कैवल्य का दार्शनिक अनुक्रम

योगसूत्र के विभिन्न सूत्रों को एक साथ देखने पर ईश्वरप्रणिधान, समाधि, विवेक और कैवल्य के बीच एक व्यापक साधनात्मक संबंध दिखाई देता है। प्रथम पाद में ईश्वरप्रणिधान, प्रणव–जप और समाधि–संबंधी साधना का वर्णन मिलता है। द्वितीय पाद में ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग और नियम में स्थान दिया गया है तथा समाधि से उसका संबंध बताया गया है। आगे विवेकख्याति को बंधन की निवृत्ति का उपाय बताया गया है और अंततः कैवल्य को पुरुष की स्वरूप–प्रतिष्ठा के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इसे एक व्याख्यात्मक क्रम के रूप में इस प्रकार समझा जा सकता हैकृईश्वर–तत्त्व → ईश्वरप्रणिधान → चित्त की एकाग्रताध्समाधि → विवेकख्याति → पुरुष–प्रकृति भेद → कैवल्य। यह क्रम किसी एक सूत्र में उसी रूप में

प्रस्तुत नहीं हुआ हैय बल्कि विभिन्न सूत्रों को उनके पारस्परिक संदर्भ में पढ़ने से प्राप्त होने वाला दार्शनिक मॉडल है। इसलिए इसे योगसूत्र की एक व्याख्यात्मक संरचना के रूप में स्वीकार करना अधिक उचित है।

22. आलोचनात्मक विवेचन

पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर की अवधारणा पर विचार करते समय दो अतियों से बचना आवश्यक है। पहली अति यह होगी कि ईश्वर को केवल धार्मिक आस्था का विषय मानकर उसके दार्शनिक पक्ष की उपेक्षा कर दी जाए। दूसरी अति यह होगी कि योगसूत्र में ईश्वर को किसी विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय के ईश्वर के रूप में निश्चित कर दिया जाए, जबकि पतञ्जलि की मूल परिभाषा अपेक्षाकृत दार्शनिक और संक्षिप्त है। पतञ्जलि ईश्वर को 'पुरुषविशेष' कहते हैं और उसकी पहचान क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से असम्पृक्तता के आधार पर करते हैं। इस कारण योगदर्शन में ईश्वर की अवधारणा को उसके अपने दार्शनिक संदर्भ में समझना आवश्यक है। आधुनिक विद्वानों ने भी ईश्वर–संबंधी सूत्रों की व्याख्या विभिन्न दृष्टियों से की है और पारम्परिक भाष्य–परम्परा का अध्ययन इस बहस को और समृद्ध करता है।

निष्कर्ष

पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर–तत्त्व एवं कैवल्य की अवधारणाएँ भारतीय दर्शन की महत्त्वपूर्ण दार्शनिक उपलब्धियाँ हैं। पतञ्जलि ने ईश्वर को "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" (योगसूत्र 1.24) कहा है। ईश्वर–प्रणिधान के माध्यम से साधक अपनी साधना में एकाग्रता, समर्पण और मानसिक स्थिरता विकसित कर सकता है। इस प्रकार ईश्वर–तत्त्व योगमार्ग में आध्यात्मिक उन्नति का महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर, कैवल्य पतञ्जलि योगदर्शन का परम लक्ष्य है। इसकी प्राप्ति पुरुष और प्रकृति के वास्तविक भेद के ज्ञान अर्थात् विवेकख्याति से संबंधित है। योगसूत्र 2.25 में अविद्या के अभाव से कैवल्य की प्राप्ति का उल्लेख किया गया है, जबकि योगसूत्र 4.34 में पुरुष की स्वरूप–प्रतिष्ठा को कैवल्य के स्वरूप से जोड़ा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि कैवल्य केवल मानसिक शांति नहीं, बल्कि पुरुष की प्रकृति से स्वतंत्रता की दार्शनिक अवस्था है।

दार्शनिक दृष्टि से ईश्वर–तत्त्व और कैवल्य परस्पर संबंधित होते हुए भी भिन्न अवधारणाएँ हैं। ईश्वर–प्रणिधान साधना का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है, जबकि कैवल्य योगसाधना का अंतिम लक्ष्य है। निष्कर्षतः, पतञ्जलि योगसूत्र में ईश्वर–तत्त्व साधक को आध्यात्मिक दिशा प्रदान करता है तथा कैवल्य आत्मस्वरूप के ज्ञान और परम स्वतंत्रता का बोध कराता है। इन दोनों अवधारणाओं का अध्ययन भारतीय दर्शन में मुक्ति, चेतना और आध्यात्मिक साधना की प्रकृति को समझने के लिए विशेष महत्त्व रखता है।

संदर्भः–

1 पतञ्जलि (1914) द योग सिस्टम ऑफ पतञ्जलि (जे. एच. वुड्स, अनुवादक) हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

2 हरिहरानन्द आरण्य, स्वामी (1983) योग फिलॉसफी ऑफ पतञ्जलि स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस।

3 ब्रायंट, एडविन एफ. (2009) द योग सूत्राज ऑफ पतञ्जलिरू पारंपरिक भाष्यकारों की अंतर्दृष्टि सहित अनुवाद एवं व्याख्या नॉर्थ पॉइंट प्रेस।

4 मिलर, बारबरा स्टोलर (1996) योग: अनुशासन और स्वतंत्रताकृपतञ्जलि के योगसूत्र यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

5 पतञ्जलि (वर्ष संस्करणानुसार) पातञ्जलयोगसूत्राणि, व्यासभाष्य सहित संबंधित संस्कृत संस्करण का प्रकाशक।

6 वाचस्पति मिश्र (वर्ष संस्करणानुसार) तत्त्ववैशारदी पतञ्जलि योगसूत्र पर व्यासभाष्य की टीका।

7 भोजराज (वर्ष संस्करणानुसार) राजमार्तण्ड पतञ्जलि योगसूत्र पर पारंपरिक भाष्य।

8 विज्ञानभिक्षु (वर्ष संस्करणानुसार) योगवार्त्तिक पतञ्जलि योगसूत्र एवं व्यासभाष्य की दार्शनिक व्याख्या।

9 विवेकानन्द, स्वामी (1896) राजयोग प्रयुक्त संस्करण का प्रकाशक।

10 ईश्वरकृष्ण (वर्ष संस्करणानुसार) सांख्यकारिका प्रयुक्त संस्कृत अथवा हिंदी अनुवाद के संस्करण का प्रकाशक।